भारत में कृषि जैव–विविधता में क्षति

नीरजा मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
nmisra09@gmail.com

प्राप्त तिथि–14.02.2015, स्वीकृत तिथि–24.02.2015

खाद्यान्न के बाजारीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जाति को भोजन तथा जीवकोपार्जन का तथा समस्त खाद्य उत्पादन के विकास का सशक्त आधार "कृषि जैव–विविधता" पर पड़ रहा है। प्रस्तुत लेख में जैव–विविधता के ह्रास के कारणों एवं निदान का विश्लेषण किया गया है जिससे भारत में कृषि जैव–विविधता के संरक्षण द्वारा कृषि को स्थायित्व एवं निरन्तरता प्रदान की जा सके। समस्त खाद्य प्रजातियों की कृषि जैव–विविधता(जो कि सामान्य जैव–विविधता का एक महत्वपूर्ण उपांग है) के समक्ष खाद्य बाजार के भूमण्डलीकरण के कारण गम्भीर संकट आसन्न है। जबकि वस्तु स्थिति यह है कि यह अरबों लोगों के भोजन, जीविकोपार्जन तथा समस्त खाद्य उत्पादन को एक सशक्त आधार प्रदान करती है। प्रस्तुत लेख में हरित क्रांति अथवा खाद्य उत्पाद के बाजारीकरण के कारण भारत की कृषि जैव–विविधता पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। इसके लिए सर्वप्रथम कृषि जैव–विविधता का अर्थ समझना आवश्यक है।

कृषि जैव–विविधता क्या है ?

यद्यपि कृषि जैव–विविधता शब्द नया है परन्तु इसकी अभिधारणा पुरानी है। यह किसानों, चरवाहों तथा मत्स्य पालनकर्ताओं द्वारा सावधानीपूर्वक किये गये चयन एवं खोजपूर्ण विकास का परिणाम है। यह मानव जाति द्वारा भोजन तथा कृषि के लिए महत्वपूर्ण विभिन्न जैविक सम्पदा के निरन्तर रखरखाव द्वारा सृजित होती है। इस प्रकार कृषि जैव–विविधता, जिसे एग्रो बायो–डायवर्सिटी भी कहते हैं, के अंतर्गत निम्नांकित सम्मिलित हैं–

फसलों की किस्में, पालतू जानवरों तथा मछलियों की प्रजातियों, जंगलों में उपलब्ध प्राकृतिक सम्पदा, जंगली क्षेत्र तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्र।

उत्पादन पारिस्थितिक तंत्र की खाद्यान्न उत्पादन में सहायक स्वतः उत्पन्न प्रजातियां जैसे– मिट्टी के सूक्ष्म जीव, परागण करने वाले जीव आदि।

वृहद् वातावरण की स्वतः उत्पन्न प्रजातियां जो खाद्य उत्पादन पारिस्थितिक तंत्र का अंग हैं(कृषि, चारागाह, जंगल तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्र)।

इस प्रकार कृषि जैव–विविधता केवल मनुष्य के कार्यकलापों का परिणाम नहीं है तथा मानव जीवन न सिर्फ खाद्य एवं अन्य पदार्थों के लिए इस पर निर्भर है अपितु भूमि के उन क्षेत्रों के रखरखाव के लिए भी है, जो उत्पादन के वृहद् वातावरण के संरक्षण हेतु आवश्यक हैं। इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खाद्य एवं कृषि(यथा फसलें, मवेशी, जंगल तथा मत्स्य पालन आदि) को प्रभावित करने वाले जीव–जन्तुओं, वनस्पतियों तथा सूक्ष्म जीवों के प्रकार एवं नई किस्में सभी कृषि जैव–विविधता का अंग हैं। इसमें जैविक सम्पदा की किस्में(प्रजाति एवं प्रकार आदि) तथा भोजन, चारा, रेशा, ईंधन एवं औषधि आदि सम्मिलित हैं। इसमें स्वतः स्फूर्त प्रजातियां जैसे– सूक्ष्म जीव, परागण करने वाले जीव आदि जो उत्पादन को प्रभावित करते हैं, सम्मिलित हैं तथा वृहद् वातावरण के कृषि–पारिस्थितिक तंत्र के उपांग(कृषि, चारागाह, जंगली क्षेत्र, जलीय क्षेत्र) के साथ ही स्वयं कृषि–पारिस्थितिक तंत्र भी सम्मिलित है।

भारत की कृषि जैव–विविधता– ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों से लेकर अल्पाइन वनस्पतियों और शीतोष्ण वनों से तटीय नमभूमि तक भारत समृद्ध और वैविध्य पूर्ण जैव–विविधता से युक्त है। 80 के दशक में 18 प्रमुख जैव–विविधता केन्द्रों की पहचान किये जाने पर भारत में दो प्रमुख केन्द्र पाये गये– पश्चिमी घाट तथा पूर्वी हिमालय। हाल में किये गये वर्गीकरण में आठ महत्वपूर्ण स्थानों में यह दो केन्द्र प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त भारत में 26 देशज केन्द्रों की पहचान की है, जो अब तक पहचाने गये एक तिहाई पुष्प प्रजातियों का घर है। भारत का यह क्षेत्र धरती का मात्र 2.4 प्रतिशत है जबकि यहाँ विश्व की 7. 31 प्रतिशत प्रजातियां पायी जाती हैं, जिनकी कुल संख्या 89,451 है। भारतीय जैव–विविधता में देशजता की बहुलता है। देश की 33 प्रतिशत वनस्पतियां देशज हैं और अधिकांशतः उत्तर–पूर्व, पश्चिमी घाट, उत्तर–पश्चिमी हिमालय और अंडमान व निकोबार द्वीपों में सीमित हैं। देश की 30 प्रतिशत वनस्पतियां स्थानीय हैं। भारत की जैव–विविधता का रिकॉर्ड भी इतना ही

प्रभावशाली है। जिनमें 167 फसली प्रजातियां एवं उनके जंगली सम्बन्धी शामिल हैं। भारत को चावल, अरहर, आम, हल्दी, अदरख, गन्ना आदि की 30,000–50,000 किस्मों का केन्द्र माना जाता है। विश्व की कृषि में सहयोग के आधार पर भारत को सातवें स्थान पर रखा गया है।

भारत में जैव–विविधता के क्षय के कारण– जैव–विविधता वातावरण में क्षय के अनेक कारणों में प्रमुख इस प्रकार हैं–

औद्योगिक और हरित क्रान्ति का तेजी से विस्तार, अत्यधिक पशुधन उत्पादन, औद्योगिक मत्स्य पालन तथा एक्वाकल्चर(जलीय संवर्धन)। कुछ फसलें एक फसली रूप से पैदा की जाती है। पालतू पशुओं की संख्या सीमित रखी जाती है तथा कुछेक मछली की एवं जलीय प्रजातियों का संवर्धन किया जाना।

खाद्य प्रणाली और विपणन, और जीवों के औद्योगिक पेटेंट के वैश्वीकरण ने ऐसे उत्पादन के लिए प्रेरित किया है जिसमें उत्पाद एक समान, कम भिन्नता वाला परन्तु वैश्विक बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी है।

कृषि जैव–विविधता के क्षय ने भारतीय कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता और चिरन्तनता के लिए अनेक तरह से संकट पैदा किया है–

1. इस क्षय ने उस आनुवंशिक आधार को कमजोर कर दिया है जिसकी आवश्यकता हमारे वैज्ञानिकों को फसलों ओर पशुओं और पशुओं में सतत् सुधार के लिए है। 90 प्रतिशत से अधिक फसलों की किस्में आज खेतों से लुप्त हो चुकी हैं। एचवाईवी$_5$(हाई यील्ड वेरायटी/उच्च उपज किस्म) की अधिकांश किस्में पारम्परिक किस्मों एवं उनके जंगली प्रकारों के अनुवंशिक भागों से विकसित किये गये हैं। यह विशेषतः संकर एचवाईवी$_5$ बहुत दीघ्रजीवी नहीं हैं। ये अपनी व्यवहारिकता और उत्पादकता खो देते हैं या कीटों के लिए अत्यन्त संवेदनशील हो जाते हैं। कुछ वर्षों में इन पर बीमारी आक्रमण करती है और उस स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि इनमें ताजा जैविक पदार्थ डाला जाय जो केवल उपलब्ध पारम्परिक या जंगली पौधों से ही मिल सकता है। परन्तु एचवाईवी[5] के बहुतायत से पारम्परिक फसलों का क्षय होता जा रहा है। इस प्रकार नयी प्रजातियां विकसित करने के लिए अनुवांशिक निर्माण हेतु आधार ही नहीं है।
2. एचवाईवी$_5$ फसल की किसी आपदा के कारण बरबादी कृषक के लिए गम्भीर झटका होती है क्योंकि उसका बहुत सारा धन सिंचाई, कीटनाशक और बीज आदि में व्यय हो चुका होता है।
3. कृषि के व्यवसायीकरण ने कृषक को उद्योग संचालित बाजार और सरकार पर अत्याधिक निर्भर बना दिया है। आज भूमि और मजदूरी के अतिरिक्त कृषक को आवश्यकता की सारी वस्तुएं बाजार से प्राप्त होती हैं जैसे बीज, सिंचाई, उर्वरक, कीटनाशक और ऋण आदि। अनेकों अनुदान के बावजूद इन सबकी कीमत लगातार बढ़ रही है।
4. इस व्यवसायीकरण ने भी कृषक के जीवन में बहुत एकरसता और असुरक्षा उत्पन्न की है। पारम्परिक धान के खेतों में केवल धान ही नहीं, वरन् मछलियां, मेढ़क जैसी अनेक जैव–विविधताएं पायी जाती थीं जो कई समुदायों, विशेषकर आदिवासियों के आहार का हिस्सा थीं आधुनिक धान के खेतों में बहुत से रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का प्रयोग इस जैव–विविधता को समाप्त देता है।
5. आज कई घरेलू जीवों की लगभग आधी प्रजातियां समाप्त हो चुकी हैं।
6. मछली पकड़ने के विश्व के 17 मुख्य स्थानों का या तो पूर्ण दोहन कर लिया गया है या उनके ने रहने की क्षमता से अधिक शोषण कर लिया गया है। जिसके कारण आज जाने कितनी मत्स्य प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं।

खाद्य उत्पादन के व्यवसायीकरण के प्रभाव– हरित क्रान्ति ने खाद्यान्न उत्पादन के तरीके में क्रान्ति ला दी। हालांकि आरम्भ में जो कृषक इसका विरोध कर रहे थे, एचवाईवी द्वारा दिखाई गयी नाटकीय खाद्यान्न उत्पादकता के परिणामों के प्रलोभन में आ गये। कृषकों ने अपने पारम्परिक बीज और खेती के तौर तरीकों को छोड़ दिया है और स्वयं सरकार तथा निजी क्षेत्र के मार्गदर्शन पर निर्भर हो गये हैं। पारम्परिक रूप से कृषि हमारी संस्कृति का हिस्सा रही है। परिश्रम और बुद्धि के अतिरिक्त कृषक को मात्र बीज और उर्वरक की आवश्यकता थी, जो उसे अपनी कृषि प्रणाली से ही प्राप्त हो जाया करते थे। सामाजिक प्रणाली से ही प्राप्त हो जाया करते थे। सामाजिक प्रथायें, अनुष्ठान और सम्बन्ध, सब स्वयं ही कृषि से जुड़े थे। जबकि नयी कृषि हरित क्रान्ति ने सारी प्रणाली को ही बदल दिया है। कृषि आज एक व्यापार बन गई है, जिसके मूल में निवेश करना और लाभ अर्जित करना है। घरेलू खपत के लिए होने वाली कृषि ने मुद्रा–बाजार का रुख कर लिया है। जैसे–जैसे गोबर की जगह रासायनिक उर्वरकों ने ले ली है, और मवेशी, दूध, ऊन और मांस के लिए पाले जा रहे हैं, पशुपालन जो कभी कृषि का अभिन्न अंग हुआ करता था, आज दोयम दर्जे का पर आ गया है। एचवाईवी बहुत कम चारे का उत्पादन करते हैं बल्कि कुछ किस्मों जैसे सोयाबीन और बौना गेहूँ में तो ये लगभग नगण्य हैं, जबकि बाजरा जैसी पारम्परिक फसलें लगभग 25 प्रतिशत चारे की आवश्यकता को पूरा कर देती थीं। इस प्रकार का अकार्बोनिक और जैविक रूप से वैविध्यपूर्ण कृषक केन्द्रित कृषि का क्षय हुआ है। मिट्टी की ऊपरी सतह के पोषक तत्वों का क्षय रासायनिक उर्वरकों से बदले

नहीं जा सकते। जलभराव, सिंचित भूमि का खारा होना, व्यापक रासायनिक विषाक्तता, अनुवांशिक क्षय आदि कृषि के व्यवसायीकरण के दुष्परिणाम हैं।

इन सबके अतिरिक्त हरित क्रान्ति से होने वाली सबसे बड़ी हानि जैविक रूप से वैविध्य पूर्ण प्रजातियों का क्षय, जिन पर कृषि निर्भर करती है। दुर्भाग्य से भारत में इस प्रकार के कुल नुकसान का कोई सही आंकलन उपलब्ध नहीं हैं। इस नुकसान का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि आज देश में एचवाईवी 70 प्रतिशत धान और 90 प्रतिशत गेहूँ का स्थान ले चुके हैं। मात्र कुछ स्थानीय अध्ययन बताते हैं कि आन्ध्र के गोदावरी जनपद की 95 प्रतिशत धान की प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। धान, कपास, बाजरा, दालों की हजारों किस्में अब प्रयोग में नहीं लायी जातीं।

भारत में कृषि जैव–विविधता का संरक्षण– जैव–विविधता के संरक्षण हेतु यह समझाना आवश्यक है कि मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने वाले जैविक वैविध्यपूर्ण कृषक वातावरण के विभिन्न अंग कृषि–उत्पादकता को बढ़ाने के लिए नितान्त आवश्यक है।

उत्पादन एवं विविधता के संगम हेतु कुछ सुझाव– थोड़े समय के लिए, क्योंकि जैव–वैविधिक्य ऑर्गेनिक(अकार्बनिक व कार्बनिक) कृषि प्रत्येक स्थान पर संभव नहीं हो सकती, भौगोलिक रूप से चलन में एचवाईवी खेती के क्षेत्रों में पारम्परिक फसलों के क्षेत्रों में सम्मिलित करने को बढ़ावा देना चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में एचवाईवी खेती सफल रहती है जबकि परम्परागत फसलों की खेती वर्षा द्वारा सिंचित मैदानों तथा पहाड़ी या दलदली इलाकों के लिए ज्यादा उपयुक्त हैं। देशज जैव–विविधता को बनाये रखना चाहिए। देशज फसलों एवं उनके प्रकारों, मवेशियों आदि पर उनके वांछित लक्षणों जैसे उत्पादकता तथा प्रतिरोधकता आदि पर शोध कार्य किये जाने चाहियें। बीज बचाओ आन्दोलन से जुड़े कृषकों की रिपोर्ट/आख्या बताती है कि गढ़वाल में परम्परागत रूप से उगाई जाने वाली थापाचीनी धान की किस्म कम लागत में आधुनिक एचवाईवी के समान उत्पादन देती है।

जैव–वैविधिक ऑर्गेनिक कृषि को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इस प्रकार की कृषि को बढ़ावा देने के लिए ऑर्गेनिक लागत, बैंक ऋण, कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि पर छूट दी जानी चाहिए। कृषक एवं उपभोक्ता, जो सुरक्षित तथा विविधतापूर्ण खाद्यान्न चाहते हैं, के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। शहरी उपभोक्ता कीटनाशकों के अंश से परिपूर्ण खाद्य के हानिकारक प्रभावों के प्रति जागरूक हैं। इस जागरुकता के कारण खाद्यान्न को कुछ बढ़े हुये मूल्य पर आसानी से उपभोक्ता खरीद लेंगे।

सरकार अथवा प्राइवेट एजेन्सियों द्वारा स्थापित विभिन्न जीन बैंकों में कृषकों द्वारा प्रयुक्त न की जा रही देशज फसलों के वैविध्य का उचित संरक्षण किया जाना चाहिये। संरक्षित नमूनों के स्वदेश आगमन तथा वितरणों की प्रभावी प्रक्रिया होनी चाहिये जिससे कृषक नई किस्मों तथा ऑर्गेनिक कृषि के तरीकों पर प्रयोग कर सकें।

कृषकों एवं कृषक समाजों को दूर–दराज के इलाकों में स्थानांतरित करके भी ऑर्गेनिक फसलों की विविधता बनाये रखने की दिशा में सहायक हो सकता है।

कृषकों के ज्ञान अथवा प्रयोगों द्वारा विकसित जैविक लक्षणों के आधार पर काफी उन्नति कृषि के क्षेत्र में की गई है परन्तु इनसे प्राप्त सरकारी अथवा कॉर्पोरेट सेन्टर तक ही सीमित रह जाते हैं। कृषक समाज को इस लाभ का हिस्सा देकर संरक्षण एवं खोज करने के लिए उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिये। उन्हें रॉयल्टी के रूप में धन अथवा विकास के साधन या सामाजिक सम्मान आदि दिया जा सकता है।

संरक्षण हेतु क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना चाहिये एवं उनके दोहन की सीमा निर्धारित होनी चाहिये। इन क्षेत्रों के कृषकों को संरक्षण प्रक्रिया के केन्द्र में रखा जाना चाहिये। अंतर्राष्ट्रीय संधियों में जैव–विविधता पर सम्मेलनों एवं पौधों की आनुवंशिक सम्पदा के उपक्रमों द्वारा संरक्षण एवं स्थानीय समुदायों के अधिकारों के प्रति जागरुकता बढ़ी है। भारत में संरक्षण के सिद्धांतों एवं समुदायों को लाभ पहुँचाने के तरीकों को जैव–विविधता संरक्षण कानून में प्रस्तावित किया गया है, जो भारत सरकार के स्तर पर विचाराधीन है।

संदर्भ

1. शर्मा, अंजू(2004) ए बायो पाइरेसी कूप, डाउन टू अर्थ, खण्ड–12, अंक–22, पृ0 55।
2. प्रसाद, पी0 एम0(2004) इनवायरन्मेंटल प्रोटेक्शनः द रोल ऑफ लायबिलिटी सिस्टेम इन इण्डिया, स्पेशल आर्टिकल, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, खण्ड–39, अंक–3, मु0पृ0 17–23।
3. सेठी, नितिन(2004) इट्स ए प्रोग्राम आउट देयर, डाउन टू अर्थ, खण्ड–12, अंक–19, मु0पृ0 27–28।
4. गुप्ता, रितु(2004) ओल्ड इज गोल्ड, डाउन टू अर्थ, खण्ड–12, अंक–16, मु0पृ0 50–51।
5. पॉलीक्रैप, क्लिफ्फोर्ड(2004) ऑन द फ्रंट बर्नर, डाउन टू अर्थ, खण्ड–12, अंक–21, मु0पृ0 24–26।
6. 6. ब्रिजेस, ई0 माइकेल एवं अन्य(संपा0)(2001) रेस्पॉन्स टु लैंड डिग्रेडेशन, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई0बी0एच0 पब्लिशिंग कं0 प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
7. जरधारी, वी0 एवं कोठारी, ए0; यूजिंग डायवर्सिटी, www.idrc.ca